विपश्यना

साधकों का मासिक प्रेरणा पत्र

बुद्धवर्ष २५४६, फाल्गुन पूर्णिमा, १८ मार्च, २००३ वर्ष ३२ अंक ९

धम्मवाणी

"यो धम्मचक्कं अभिभुय्य केवली, पवत्तयी सब्बभूतानुकम्पी।
तं तादिसं देवमनुस्ससेट्ठं, सत्ता नमस्सन्ति भवस्स पारगुं॥
(अङ्गुत्तरनिकाय, चतुक्कनिपातपाळि, १.४.८)

सभी प्राणियों पर अनुकम्पा कर जिस महापुरुष ने धर्मचक्र प्रवर्तित किया, उस देव-मनुष्य-श्रेष्ठ भव-पारंगत बुद्ध को सभी प्राणी नमस्कार करते हैं।

[धारण करे तो धर्म]

धर्मचक्र कैसे चले?

(जी-टीवी पर क्रमशः चौवालीस कड़ियों में प्रसारित पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों की तेईसवीं कड़ी)

धर्मचक्र चलता है तो लोकचक्र भंजित होता है। भवचक्र भंजित होता है। दुःखचक्र भंजित होता है। धर्मचक्र चले। पर कैसे चले? केवल बुद्धि के स्तर पर सच्चाई को समझ लेने मात्र से धर्मचक्र नहीं चलता। अनुभूतियों से जाने। वेदन माने अनुभवन। दर्शन माने अनुभवन। विपश्यन माने अनुभवन। स्वयं अनुभव से जाने। इस साढ़े तीन हाथ की काया के भीतर कहां कैसी संवेदना प्रकट हुई, कहां कैसी संवेदना प्रकट हुई, प्रकट हुई तो कहीं बेहोशी में मैंने रागमयी तृष्णा तो नहीं जगा ली? द्वेषमयी तृष्णा तो नहीं जगा ली? देखता है, बड़े ध्यान से देखता है। बहुत बार तो पुरानी आदत की वजह से रागमयी तृष्णा जगाता ही है, द्वेषमयी तृष्णा जगाता ही है। जैसे सिर पानी के नीचे चला गया। पता ही नहीं क्या हो रहा है? कहां बहे जा रहे हैं? फिर होश आता है। फिर विद्या जागती है तो सिर पानी के ऊपर आता है। ओ, ऐसा हो रहा है। तो सुधार करना शुरू करता है। सिर पानी के ऊपर आता है माने शरीर की संवेदनाओं को देखने लगा और समता कायम रखने लगा। अनित्यबोधिनी प्रज्ञा पुष्ट बनाने लगा। कुछदेर ऐसे करते-करते फिर पानी के नीचे सिर चला गया। फिर वही अविद्या, फिर वही अंधकार, फिर वही राग, फिर वही द्वेष, फिर वही दुःख। दुःखचक्र, दुःखचक्र, दुःखचक्र। बीच-बीच में जो होश जागता है और धर्मचक्र चलता है, वह कल्याण की बात होने लगी। अभ्यास करते-करते, अभ्यास करते-करते स्वभाव पलटना शुरू हो जायगा। अंतर्मन की गहराइयों में, तलस्पर्शी गहराइयों में एक स्वभाव-शिकंजा तैयार हो गया और उसमें गिरफ्त हो गये। जब देखो तब राग जगाये जा रहे हैं। सुखद संवेदना आयी है, राग जगाये जा रहे हैं। दुःखद संवेदना आयी है, द्वेष जगाये जा रहे हैं।

ऊपर-ऊपर के मानस पर जिसे आज के पश्चिमी वैज्ञानिक 'कांशियस माइंड' कहते हैं, भारत के वैज्ञानिकों ने, ऋषियों ने, मुनियों ने, बुद्धों ने, अरहंतों ने ये शब्द नहीं इस्तेमाल किये। उन्होंने इसे 'परित्त चित्त' कहा और देखा कि यह ऊपर-ऊपर का चित्त है, जिसे हम कहीं भी लगायें – किसी धर्मचर्चा में लगायें, किसी तरह के पठन-पाठन में लगायें तो यों लगता है जैसे राग नहीं जाग रहा, द्वेष नहीं जाग रहा। अरे, यह तो ऊपर-ऊपर का मानस हुआ ना! बुद्धि के स्तर की बात है, जो बहुत छोटी है; सारे मानस के मुकाबले बहुत छोटी है। वहां राग नहीं जाग रहा, द्वेष नहीं जाग रहा। हो सकता है सचमुच नहीं जाग रहा हो, पर अंतर्मन की गहराइयों में तो वही क्रम चल रहा है और वहां गहरे-गहरे, पत्थर की लकीर वाले, पत्थर की लकीर वाले संस्कार बने ही जा रहे हैं। तब यह भवचक्र चलता ही जायगा, लोकचक्र चलता ही जायगा, दुःखचक्र चलता ही जायगा। कैसे काटें इसे?

शरीर पर होने वाली संवेदना एक ऐसा बिंदु है, जहां से दो धाराएं फूटती हैं। यह एक ऐसा जंक्शन है, जहां से दो पटरियां अलग-अलग होती हैं, दो दिशाओं की ओर जाने के लिए रास्ता मिलता है। एक दिशा, एक रास्ता ऐसा जिसे कहें – "दुःखसमुदयगामिनी प्रतिपदा"। प्रतिपदा माने मार्ग। ऐसा मार्ग जिसमें दुःख उत्पन्न हुए जा रहा है, दुःख समुदय हुए जा रहा है, उसका संवर्धन हुए जा रहा है। दुःख ही दुःख; दुःख ही दुःख। एक जन्म नहीं, जन्म-जन्मांतरों तक वही धारा हमको दुःख की ओर, दुःख की ओर ले जाए जा रही है।

वही संवेदना का बिंदु ऐसा है जिससे दूसरा मार्ग भी चलता है – "दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा", जो सारे दुःखों का निरोध कर दे, उन्हें समाप्त कर दे। ऐसी प्रतिपदा, ऐसा मार्ग इसी बिंदु से चलता है। तो यह बिंदु पकड़ में आना चाहिए कि कहां हम अपना भवचक्र चलाये जा रहे हैं और कहां उसे रोक करके धर्मचक्र चलाना आरंभ कर सकते हैं। सारे शरीर पर प्रतिक्षण कोई न कोई संवेदना होती ही रहती है। अणु-अणु में कोई-न-कोई संवेदना होती रहती है। यह प्रकृति का नियम है और उस संवेदना की वजह से हमारे अंतर्मन का यह स्वभाव हो गया कि वह सुखद लगती है तो राग पैदा करता है; दुःखद लगती है तो द्वेष पैदा करता है। यह राग, यह द्वेष; यह राग, यह द्वेष, गांठों पर गांठें बँधती जा रही है। कर्म-संस्कार ही कर्म-संस्कार बनते जा रहे हैं जो आगे के लिए दुःख ही दुःख पैदा करेंगे। इस क्षण भी दुःख पैदा हुआ। जैसे ही राग जगाया कि भीतर के मन ने अपनी शांति खो दी, द्वेष जगाया कि अंतर्मन ने अपनी शांति खो दी। अशांत हो गया, बेचैन हो गया, दुखियारा हो गया। बीज दुःख का डाल रहा है, अतः आगे के लिए दुःख ही दुःख का निर्माण हो रहा है।

यह राग पैदा करने वाला स्वभाव-शिकंजा, द्वेष पैदा करने वाला स्वभाव-शिकंजा, जिसमें हम जकड़े हुए हैं, इसे इन संवेदनाओं से ऊर्जा

मिलती है। जब इसी का होश नहीं है कि कहां से ऊर्जा मिलती है? इसी का होश नहीं है कि कहां संवेदना हो रही है? तो कैसे उसके बाहर आयेंगे? सारी साधना इस बात के लिए कि अंतर्मुखी होकर किसी कल्पना के ध्यान में मत लग जाना, अन्यथा सच्चाई पकड़ में ही नहीं आयेगी। यह ऊपर-ऊपर का मानस एकाग्र हो जायगा। लगेगा बहुत शांत हो गया। लगेगा देखो राग नहीं जगाता, द्वेष नहीं जगाता। अरे, भीतर क्या हो रहा है? यह ऊपर वाला चित्त, जिसे उन दिनों की भाषा में कहा "परित्त चित्त" माने परिमित चित्त है। बड़ा छोटा-सा चित्त है और बाकी सारा का सारा चित्त का इतना बड़ा हिस्सा। इन दोनों के बीच में इतनी मोटी-मोटी दीवारें। पता ही नहीं लगता, क्या हो रहा है? यह जो नीचे वाला चित्त है, अंतर्मन है, यह तो प्रतिक्षण संवेदनाओं को महसूस करते रहता है। सोते-जागते, हर अवस्था में संवेदना महसूस करता है। उसे सुखद लगती है, झट राग जगाने लगता है। उसे दुःखद लगती है, झट द्वेष जगाने लगता है। यही काम किये जा रहा है। उसका स्वभाव हो गया। तो यह ऊपर-ऊपर वाले छोटे से चित्त के और भीतर वाले बड़े चित्त के बीच की जो दीवार है वह टूटनी चाहिए ताकि जो बात ऊपर वाला चित्त बुद्धि के स्तर समझता है, उसका संदेश नीचे तक जाय। दोनों में कोई फर्क न रह जाय। ऊपर वाला चित्त खूब समझता है राग मत करो, दुःखी हो जाओगे। द्वेष मत करो, दुःखी हो जाओगे। पर उसकी यह विद्या, उसकी यह बुद्धि, उसका यह ज्ञान केवल ऊपरी-ऊपरी ज्ञान है, नीचे तक पहुँच ही नहीं पाता। *इस साधना द्वारा यह दीवार टूटती है तो सारे शरीर में क्या हो रहा है, उसका अनुभव होने लगता है। अनुभव हो रहा है और जान रहे हैं कि देख पुरानी आदत की वजह से हमने फिर प्रतिक्रिया कर दी। राग की प्रतिक्रिया कर दी कि द्वेष की प्रतिक्रिया कर दी और इस भवचक्र को जरा और धक्का दे दिया। देख, हमने रोका; राग नहीं जगाया, द्वेष नहीं जगाया। हमने अनित्य बोध जगाया। यह अनित्य है, कल्पना की बात नहीं है।* देखता है भीतर कि कितनी ही सुखद संवेदना जागे, देर-सबेर समाप्त हो जाती है। कितनी ही दुःखद संवेदना जागे, देर-सबेर समाप्त हो जाती है। अनुभव से जान रहा है, अनित्य है, नश्वर है, भंगुर है। अरे, इसके प्रति क्या राग करें? इसके प्रति क्या द्वेष करें? अब यह अंतर्मन समझने लगा। केवल ऊपर-ऊपर के मन की बात नहीं रह गयी और स्वभाव पलटने लगा, स्वभाव पलटने लगा। मुक्ति का रास्ता मिल गया। मोक्ष का रास्ता मिल गया। अरे, यही रास्ता तो खोजा उस व्यक्ति ने जो सम्यक संबुद्ध बना। यह रास्ता खोज करके तो स्वयं मुक्त हुआ, शुद्ध हुआ, बुद्ध हुआ और यही लोगों को बांटा। उस अवस्था पर जब पहुँचा, मुक्ति की अवस्था पर पहुँचा तो बड़े हर्ष के उद्गार निकले। किसी मुक्त हुए व्यक्ति के उद्गार कितने कल्याणकारी होते हैं। पैंतीस वर्ष की अवस्था में यह व्यक्ति सम्यक संबुद्ध बना और अस्सी बर्ष की पकी हुई अवस्था में इसने अपने प्राण छोड़े। पैंतालीस बरसों तक रात-दिन, रात-दिन लोकसेवा ही लोकसेवा करता रहा। लोककल्याण ही लोककल्याण करता रहा। अधिक से अधिक लोगों का भला कैसे हो जाय? उनका हित कैसे हो जाय? उन्हें सुख कैसे प्राप्त हो जाय? वे दुःख से कैसे निकल जांय? यही विद्या बांटता रहा, यही विद्या बांटता रहा।

सारी की सारी वाणी कहीं से उठा कर देख लो, मीठा पूआ है। कहीं से तोड़ कर खाओ, मीठा ही लगेगा। वाणी कहीं से सुन लो, बड़ी कल्याणकारिणी, बड़ी कल्याणकारिणी लेकिन सम्यक संबुद्ध होते ही जो पहले उद्गार निकले, अरे, उनका क्या कहना? तो पहले उद्गार क्या निकले? इस अवस्था को प्राप्त करके हर्ष के मारे कहते हैं –

अनेक जाति संसारं, सन्धाविस्सं अनिबिस्सं।
गहकारं गवेसन्तो, दुक्खा जाति पुनप्पुनं॥
गहकारक दिट्ठोसि, पुनगेहं न काहसि।
सब्बा ते फासुका भग्गा, गहकूटं विसङ्खितं।
विसङ्खारगतं चित्तं, तण्हानं खयमज्झगा॥

क्या कह गये – "अनेक जाति संसारं", अंतर्मुखी होकर के, चित्त को एकाग्र करते-करते, ये सामान्य ध्यान की जो अवस्थाएं हैं; पहले ध्यान से लेकर के आठवें ध्यान तक की जो अवस्थाएं हैं; इन्हीं में एक ऊर्जा जागती है, शक्ति जागती है और साधक अपने पूर्व जन्मों का स्मरण करने लगता है। इसके पहले यह जन्म हुआ था और उसमें यह-यह घटना घटी थी। उसके पहले यह जन्म हुआ था, यह-यह घटना घटी थी। यूं अपने पूर्व जन्मों की उसमें स्मृति जागती है। जिसने जिस गहराई से साधना की, ध्यान किया उसको उतनी क्षमता प्राप्त हुई। किसी को दस जन्मों की स्मृति जागी। किसी को सौ जन्मों की स्मृति जागी। किसी को हजार जन्मों की स्मृति जागी। अरे, जो सम्यक संबुद्ध हो गया उसको अगणित जन्मों की स्मृतियां जागी। तो कहता है –"अनेक जाति संसारं...", अनेक बार जन्म लेते हुए इस संसार में संसरण करता रहा; भव संसरण करता रहा। अगणित बार जन्म लेता गया, जन्म लेता गया और यह भवचक्र चलता रहा और बिना रुके हुए, बिना कुछ प्राप्त किये हुए संधावन करते रहा, दौड़ लगाते रहा।

हर व्यक्ति, हर प्राणी दौड़ लगाता है। जन्म लेता है तो मृत्यु की ओर दौड़ शुरू हो जाती है। मृत्यु तक पहुँचता ही है। रास्ते में कहीं रुक नहीं सकता। कोई कहे, एक मिनट के लिए तो रुक जा, सुस्ता ले जरा। नहीं रुक सकता। प्रतिक्षण मृत्यु की ओर दौड़ लगाये जा रहा है। तो कहता है – "सन्धाविस्सं अनिबिस्सं", बिना रुके हुए, बिना कुछ प्राप्त किये हुए दौड़ लग रही है, दौड़ लग रही है। अरे, कितने जन्मों से यह दौड़ लग रही है? तो देखता है कि अनेक जन्मों की दौड़ लगाने के पीछे मेरा क्या मकसद था? तो बोधिसत्त्व है ना, अनेक जन्मों में मन में यह बात उठती थी कि यह मृत्यु के बाद बार-बार एक नया जन्म आ जाता है। मृत्यु के बाद बार-बार एक नया घर बन जाता है। इस घर को कौन बनाता है? ऐसी मान्यता न जाने कब से चली आ रही थी कि यह जो बार-बार घर बनाता है, बार-बार यह सृष्टि बनाता है; अरे, उसका कहीं दर्शन हो जाय तो इस भव संसरण से मुक्ति हो जाय। तो कहता है –"गहकारकं गवेसन्तो", उस घर बनाने वाले की गवेषणा में, उसकी खोज में दौड़ लगाता रहा, दौड़ लगाता रहा और "दुक्खा जाति पुनप्पुनं", घर बनाने वाले की खोज में बार-बार नया जन्म आता गया और बार-बार दुःख में-से गुजरता गया।

अब क्या हुआ? "गहकारक दिट्ठोसि", ऐ घर बनाने वाले! तू देख लिया गया। तुझे देख लिया। "पुन गेहं न काहसि", अब तू मेरा नया घर नहीं बना सकता। बना ही नहीं सकता। किस घर बनाने वाले को देख लिया और वह क्यों नया घर नहीं बना सकता? अरे, इस सारे के सारे प्रकृति के नियम को देख लिया, धर्म को देख लिया, ऋत को देख लिया। कैसे घर बनता है? कौन घर बनाने वाला है? हर व्यक्ति अपना घर स्वयं बनाता है। कर्म-संस्कार पर कर्म-संस्कार बनाये जा रहा है, आगे के लिए घर तैयार किये जा रहा है। कर्म-संस्कार बनाये जा रहा है, घर बने जा रहा है। तो अपने भीतर यह जो लोकचक्र चल रहा है, यह जो भवचक्र चल रहा है, यह जो दुःखचक्र चल रहा है उसका दर्शन हो गया तो सब कुछ जान गया, सर्वज्ञ हो गया।

"गहकारक दिट्ठोसि पुन गेहं न काहसि", अब नया घर बन ही नहीं सकता। क्यों नहीं बन सकता? "सब्बा ते फासुका भग्गा, गहकूटं

विसङ्खितं।" उन दिनों घर बनाने के लिए जो बिल्डिंग मैटेरियल्स हुआ करते थे, उसमें घर के बीचोबीच एक बहुत ऊंचा स्तंभ और फिर गोलाकार छोटे-छोटे स्तंभ और उस बड़े स्तंभ से छोटे स्तंभ को जोड़ती हुई कड़ियां; इस प्रकार घर बनता था। "सब्बा ते फासुका भग्गा, गहकूटं विसङ्खितं", जितनी कड़ियां थीं, सब तोड़ डाली और यह जो बीच का केंद्र-स्तंभ था उसे भी तोड़ कर फेंक दिया। बिल्डिंग मैटेरियल्स ही नहीं रह गये तो बिल्डिंग कहां से बनेगी? क्या तोड़ कर फेंक दिया? तो कहता है –"विसङ्खार गतं चित्तं", चित्त को संस्कारों से विहीन कर लिया। सारे भव-संस्कार समाप्त कर लिये। एक भी ऐसा भव-संस्कार नहीं रह गया, जो नया भव बनाये। सारे नष्ट हो गये। इसी विद्या द्वारा सारे निकाल फेंके पुराना सारा समाप्त कर लिया और नयी तृष्णा जग ही नहीं पाती। क्योंकि "तण्हा नं खयमज्झगा", उस अवस्था का साक्षात्कार हो गया, जहां तृष्णा का नामोनिशान नहीं। जड़ों से उखड़ गयी। वह नित्य, शाश्वत, ध्रुव, इंद्रियातीत अवस्था, भवातीत अवस्था, लोकातीत अवस्था, उसका साक्षात्कार हो गया माने वह अनुभूति पर उतर गयी। यों चित्त में जब कोई पुराना संस्कार ही नहीं रहा, भव जगाने वाला कोई संस्कार ही नहीं रह गया और नया संस्कार बनता नहीं क्योंकि नयी तृष्णा ही नहीं जगाता तो नया घर कैसे बनेगा? नया घर बन ही नहीं सकता। "विसङ्खार गतं चित्त", नया संस्कार बने नहीं और पुराना सारा समाप्त हो जाय –यह अवस्था प्राप्त होनी चाहिए। **"खीणं पुराणं नवं नत्थि सम्भवं",** पुराने सारे क्षीण हो जायँ, नया बने नहीं। जितना संग्रह कर रखा है वह सारा का सारा निकलकर के नष्ट हो जाय और नया बनने न पाये तो काहे से नया घर बनेगा? नया जन्म कैसे होगा? भव-संसार कैसे चलेगा? समाप्त हो ही जायगा। तो प्रसन्नता के भाव में ये पहले उद्गार निकले और यही लोगों को सिखाते रहे।

अरे, और सारे जंजाल की बातों को एक ओर रखो रे! जो बातें अप्रासांगिक हैं। जिनका हमारे भवचक्र चलने से कोई लेन-देन नहीं, जिनका हमारे भवचक्र को तोड़ने से कोई लेन-देन नहीं, जिनका धर्मचक्र चलने से कोई लेन-देन नहीं, उन बातों में कहां उलझे पड़े हो! इर्रिलेवेंट बातें, उनसे क्या संबंध है इस भवचक्र का, उनसे क्या संबंध है इस भवचक्र के टूटने का? काम की बात सीखो ना! भवचक्र कहां शुरू होता है!

विकार जागता है और गहरा होते-होते भव-संस्कार बन जाता है। भव-संस्कार बन जाता है तो नया भव लायेगा ही, नया जन्म लाएगा ही। मृत्यु के समय जागेगा। पहले ही अनेक भव-संस्कार इकट्ठे कर रखे हैं, उनमें से कोई-न-कोई जागेगा और नया प्रतिसंधि विज्ञान बन कर के नया जन्म चल पड़ेगा, नई धारा चल पड़ेगी। यों जन्म के बाद जन्म, जन्म के बाद जन्म, दुःख के बाद दुःख, दुःख के बाद दुःख; अरे चलता ही जायगा ना! तो बड़ी सीधी सी बात है, वैज्ञानिक बात है, शरीर और चित्त का कैसे परस्पर संबंध हो रहा है? दोनों एक दूसरे को किस प्रकार प्रभावित कर रहे हैं? भीतर एक संवेदना जागती है। मन प्रभावित होता है। संवेदना शरीर पर जागी है। मन प्रभावित होता है और एक संस्कार बनाता है। राग का बनाता है या द्वेष का बनाता है और बनाये ही जाता है, बनाये ही जाता है। तो गहरी-गहरी पत्थर की लकीरों जैसे भव संस्कार बनते हैं। भव संस्कार बनते हैं तो जन्म पर जन्म, जन्म पर जन्म होता जाता है और हर जन्म जरा लाता है, मृत्यु लाता है, दुःख लाता है, दौर्मनस्यता लाता है। शारीरिक दुःख लाता है, मानसिक दुःख लाता है। दुःख ही दुःख, दुःख ही दुःख। यह अनचाही बात हो गयी। वह मनचाही बात नहीं हुई। जीवन भर ऐसे चलता है। तो दुःख ही दुःख, दुःख ही दुःख। कैसे बाहर निकलें?

तो यह सरल तरीका लोगों को दिया। जिस तरीके से स्वयं बाहर निकले, वही तरीका लोगों को समझाया। सांस के सहारे-सहारे चित्त को एकाग्र करना सीखो। शुद्ध सांस के सहारे, क्योंकि सत्य का दर्शन करना है। सत्य का दर्शन करते-करते ही परम सत्य तक पहुँचे। इसी बात को आगे का एक महान संत कहता है कि "आदि सच्च, जुगादि सच्च, है भी सच्च, नानक होसी भी सच्च।" आरंभ हम सत्य से करेंगे। जो सच्चाई अनुभूति पर उतर रही है उसी के सहारे-सहारे अगले क्षण जो सत्य प्रकट हुआ, उसको आलंबन बनाया। उसके अगले क्षण जो सत्य प्रकट हुआ, उसको आलंबन बनाया। तो अपने आप सूक्ष्म, सूक्ष्म; सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम सत्य प्रकट होते चले जायेंगे। शरीर और चित्त के संबंध में अपनी अनुभूतियों के सहारे और यों होते-होते अंतिम सत्य, परम सत्य, इंद्रियातीत सत्य, भवातीत सत्य, जहां सारी इंद्रियां काम करनी बंद कर देंगी, उस परम सत्य की अनुभूति होगी जो नित्य है, शाश्वत है, ध्रुव है। जो एक रस है, अजर है, अमर है, अमृत है। उसका साक्षात्कार होना चाहिए। उसकी कोरी बातें करके रह जायेंगे तो काम नहीं बनेगा। उसकी केवल चर्चा करके रह जायेंगे तो काम नहीं बनेगा। उसको एक फिलासफी बना कर रह जायेंगे तो काम नहीं बनेगा। अरे, सच्चाई के रास्ते चलना है। अपने भीतर इस सचखंड की यात्रा करनी है। सच ही सच। सच ही सच। सांस को देख रहे हैं, सच ही सच। कोई कृत्रिम बात नहीं, कोई बनावटी बात नहीं पैदा कर रहे, क्योंकि कोई शब्द इसके साथ नहीं जोड़ रहे। कोई कल्पना इसके साथ नहीं जोड़ रहे। कोई मान्यता इसके साथ नहीं जोड़ रहे। शुद्ध वैज्ञानिक बात है। हमको अपने शरीर और चित्त के बारे में पूरी जानकारी करनी है। और इसके परे की जो सच्चाई है, उसकी जानकारी करनी है। तो पहले शरीर और चित्त के बारे में क्या सच्चाई है, उसकी जानकारी करते हैं। तो सांस को जान रहे हैं। जानते-जानते, प्रयास करते-करते, परिश्रम करते-करते; मन बार-बार भागता है, फिर ले आते हैं। मन भागता है, फिर ले आते हैं और जिस वातावरण में, किसी तपोभूमि में आकर के यह साधना सीखी अथवा तपोभूमि में शिविर नहीं लग रहा है कहीं और लग रहा है, किसी स्कूल में, किसी कालेज में, किसी धर्मशाला में, किसी मंदिर में, किसी देवालय में, कहीं भी लग रहा हो। वहां जा करके सीखता है तो उस वातावरण में, जहां बाहरी बाधाएं नहीं हैं, यही काम करना है और सारे लोग यही काम करने के लिए एकत्र हुए हैं।

तो देखते-देखते, अंतर्मुखी होते-होते और सच्चाइयां प्रकट होने लगती हैं और होते-होते सारे शरीर की संवेदनाएं महसूस होने लगती हैं। स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्म से सूक्ष्मतर और यों होते-होते चित्त निर्मल होते जाता है, निर्मल होते जाता है। परम सत्य का साक्षात्कार हो जाता है। अरे, बड़ा मंगल होता है। कोई चले तो। यह धर्मचक्र चलाता हुआ चले तो सारे दुःखचक्र समाप्त हो जायेंगे। खूब मंगल होगा। खूब कल्याण होगा। स्वस्ति ही स्वस्ति होगी। मुक्ति ही मुक्ति होगी।

विपश्यना पत्र के स्वामित्व आदि का विवरण

समाचार पत्र का नाम : **"विपश्यना"**
भाषा : हिंदी
प्रकाशन का नियत काल : मासिक (प्रत्येक पूर्णिमा)
प्रकाशन का स्थान : विपश्यना विशोधन विन्यास, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३.
मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक का नाम : राम प्रताप यादव
राष्ट्रीयता : भारतीय
मुद्रण का स्थान : अक्षरचित्र, बी-६९, सातपुर, नाशिक-७.

पत्रिक के मालिक का नाम : विपश्यना विशोधन विन्यास,
(रजि. मुख्य कार्यालय):
ग्रीन हाऊस, २ रा माला,
ग्रीन स्ट्रीट, फोर्ट, मुंबई-४०००२३.

मैं, राम प्रताप यादव एतद् द्वारा घोषित करता हूं कि ऊपर दिया गया विवरण मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य है।

राम प्रताप यादव,
मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक
दि. २८-२-२००३.

मुंबई में पूज्य गुरुदेव की सात दिवसीय प्रवचनमाला

दि. १० से १६ मई तक, **प्रतिदिन** सायं ६:३० से ८:०० बजे तक, **स्थानः** शिवाजी पार्क, दादर (प.) (खुले प्रांगण में)

नए उत्तरदायित्वः आचार्य

१. श्री एन. वाई. लोखंडे, धर्मप्रसार की सेवा
२. प्रो. धर, दिल्ली – भूटान की धर्मसेवा (अतिरिक्त भार)
३-४. श्री विश्वंभर एवं श्रीमती नलिनी दहाट, विदर्भ की धर्मसेवा, (धम्मनाग को छोड़ कर)
५. श्रीमती जया मोदी, धर्मप्रसार की सेवा
6-7. Dr. Geo & Kathy Poland, Spread of Dhamma

वरिष्ठ सहायक आचार्य

१. श्री दिनेश मेश्राम, 'धम्म कानन' की सेवा
२-३. श्री सुरेशचंद्र एवं श्रीमती कांता कठाने, 'धम्मकेतु' की सेवा
४-५. श्री गोपालशरण एवं श्रीमती पुष्पा सिंह, 'धम्मलक्खण' की सेवा
5. Mrs. Maria Claxton, Austr.
6-7. Mark & Petra Lennon, "

नव नियुक्तियां

सहायक आचार्य

१. श्रीमती मयूरी योगेश शाह, बड़ोदा
२. श्रीमती चंद्रिका कामदार, मुंबई
३. श्री उमेश गौड़, भुज
४-५. श्री दीनानाथ एवं श्रीमती लता दळवी, मुंबई
६-७. श्री शरतचंद्र एवं श्रीमती सुधा जैन, अमेरिका
8. Mr. Fabrizio Ruggiero, Itly
9-10. Mr. Carl Franz & Mrs Lorena Havens, USA
11. Mr. James O'Donovan, Ireland
12. Ms. Robin Russ, USA
13. Ms. Carole Anne Potter, USA
14. Ms. Benelle Reeble, USA

बाल शिविर शिक्षक

१. श्री दत्ता कोहिनकर, पुणे
२. डॉ. जानकीशरण अग्रवाल, गाजियाबाद
३. श्री मिलिंद खोब्रागड़े, जबलपुर
४. श्रीमती अनीता रामटेके, भोपाल
५. श्रीमती सुधा भूतड़ा, भोपाल,
६. डॉ. (श्रीमती) वीना मुक्तेश, दिल्ली
७. श्री इंद्रजीत वर्मा, दिल्ली
८. श्री सुरेश लक्ष्मण गायकवाड़, वाडा
९. श्री चंद्रकांत मिसळ, वाडा
१०-११. श्री सुनील एवं श्रीमती डाली ताम्राकार, इंदौर
12. Mr. Ole Bosch, South Africa
13. Mr. Gal Mayroz, Israel

दोहे धर्म के

चार सत्य हैं जगत के, इनसे मुख मत मोड़।
यही मार्ग है मुक्ति का, आश परायी छोड़॥

आठ अंग हैं धरम के, दूर करें भव-व्याधि।
तीन भाग में बँट रहे, प्रज्ञा शील समाधि॥

दुःख-मूल उत्खनन की, पायी जिसने राह।
वही हुआ सुख-शान्ति का, सच्चा शाहन्शाह॥

कोरे बुद्धि-विलास से, होय नहीं कल्याण।
आर्य-पंथ पर जब चलें, तब पाएं निर्वाण॥

ना गौतम से राग है, द्वेष कृष्ण से नाय।
प्रज्ञा-पथ ही ग्राह्य है, भले कहीं से पाय॥

मिथ्या माया त्याग कर, परम सत्य की ओर।
कदम कदम चलते रहें, बढें लक्ष्य की ओर॥

मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास
११-१३, सनस प्लाजा, १३०२ बाजीराव रोड,
पूणे-४११००२, फोनः ४४८-६१९०
महालक्ष्मी मंदिर लेन, २२ भूलाभाई देसाई रोड,
मुम्बई-४०००२६, फोनः ४९२-३५२६
की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धरम रा

लोकचक्र नै त्याग दै, धर्मचक्र लै धार।
लोकचक्र रै कारणै, भोगै दुक्ख अपार॥

समझां दुख रै मूळ नै, लेवां मूळ उखाड़।
तो खुल ज्यावै मुक्ति रा, आपै बंद किवाड़॥

अंग अंग जाग्रत हुवै, उदय अस्त रो ग्यान।
चित्त निपट निरमळ हुवै, प्रगटै पद निरवाण॥

बाहर बाहर भटकतां, मोक्ख न पायो कोय।
जो भी भीतर देखियो, मुक्त होगयो सोय॥

तेल चुक्यो बाती चुकी, लौ हुयी अंतरधान।
मूरख पूछै कित गयो, अरहत पा निरवाण॥

हास रुदन रै छोभ स्यूं, चित व्याकुल ही होय।
साचो सुख जद मुक्ति मँह, चित्त समाहित होय॥

मेसर्स गो गो गारमेंट्स
३१ -४२, भांगवाड़ी शॉपिंग आर्केड,
१ला माला, कालबादेवी रोड, मुंबई - ४००००२.
टे. ०२२- २०५०४१४
की मंगल कामनाओं सहित

'विपश्यना विशोधन विन्यास' के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादकः राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३, दूरभाष : (०२५५३) २४४०८६, २४४०७६.
मुद्रण स्थान : अक्षर चित्र प्रिंटिंग प्रेस, ६९- बी रोड, सातपुर, नाशिक-४२२००७. **बुद्धवर्ष २५४६, फाल्गुन पूर्णिमा, १८ मार्च, २००३**

वार्षिक शुल्क रु. २०/-,विदेश में US $ 10, **आजीवन शुल्क** रु. २५०/-, " US $ 100. **'विपश्यना' रजि. नं. १९१५६/७१.** Regn. No. AR/NSK-46/2003

Licenced to post w**ithout Prepayment of postage** -- Licence number-- **AR/NSK-WP/3**
Posting day- Purnima of Every Month, Posted at **Igatpuri-422403,** Dist. Nashik (M.S.)

If not delivered please return to:-

विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२४०३
जिला-नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
दूरभाष : (०२५५३)२४४०७६
फैक्स : (०२५५३) २४४१७६
Website: www.vri.dhamma.org
e-mail: dhamma_nsk@sancharnet.in